प्राचीन भारत में महिलाओं के धार्मिक अधिकार : एक अध्ययन

डॉ0 राज बहादुर यादव*

स्त्रियों को प्राचीन भारतीय समाज में बड़े ही श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। वह पुरूष की 'शरीरार्द्ध' और 'अर्द्धांगिनी' मानी गयी तथा उसके जीवन में स्त्री का महत्व 'श्री' एवं 'लक्ष्मी' के रूप में, वह उसके जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्त और पुंजित करने वाली कही गई।[1] वह श्वसुर गृह की साम्राज्ञी मानी जाती थी।[2] ऋग्वेद में दम्पत्तियों द्वारा यज्ञीय कार्य करने का उल्लेख मिलता है।[3] चूँकि स्त्री और पुरूष यज्ञ रूपी रथ के जुड़े हुए दो बैल माने गये थे।[4] अतः यज्ञ में उसकी उपस्थितिक अनिवार्यता पत्नी संज्ञा को चरितार्थ करता है।[5] पति की अनुपस्थिति में वह धार्मिक कृत्य कर सकती थी।[6] जबकि अकेला पुरूष यज्ञ के अयोग्य समझा जाता था।[7] ऐसा उल्लेख मिलता है कि पति की अनुपस्थिति में ही विश्ववारा धार्मिक कृत्य करती थी। ऋग्वेद के अनुसार, पत्नी को यज्ञ करने एवं उसमें आहुति देने संबंधी अधिकार प्राप्त था।[8] बिना पत्नी के सहयोग के यज्ञ अधूरा माना जाता था, क्योंकि वे ही यज्ञ की अधिकारिणी होती थी।[9] यज्ञीय कार्य सम्पन्न करने से पूर्व पति–पत्नी दोनों को एक विशेष प्रकार के उपनयन से गुजरना पड़ता था।[10] तथा उसमें सफलता हेतु दोनों को समान रूप से सक्रिय रहना पड़ता था।[11]

यद्यपि उत्तरवैदिक काल के उपरांत धार्मिक जटिलताएँ क्रमशः बढ़ते जाने के कारण ज्यादातर अनुष्ठान पुरूष ही करने लगे थे,[12] तथापि उसमें पत्नी की उपस्थिति स्वीकार की जाती रही।[13] ऐतरेय ब्राह्मण साहित्य से विदित होता है कि यद्यपि कुछ धार्मिक कार्य पत्नी की उपस्थिति के बिना भी सम्पन्न होने लगा था,[14] जो निःसन्देह बदलते सामाजिक परिवेश में हो रहे उनके धार्मिक अधिकारों के ह्रास को चिन्हित करता है। किन्तु अश्वमेध, वाजपेय तथा राजसूय जैसे यज्ञों एवं सामान्य धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी उपस्थिति अब भी अनिवार्य थी। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उन्हें वैदिक साहित्य पढ़ने और यज्ञीय कार्य करने सम्बन्धी

पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनुपर

समस्त अधिकार प्राप्त था। यज्ञीय कार्य से पूर्व उनका उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी एक धार्मिक क्रिया का उल्लेख मिलता है, जिसको करने के उपरान्त वे वैदिक ग्रंथों का पाठ एवं यज्ञीय कार्य सम्पादित कर सकती थी। कतिपय सूत्रकालीन स्मृतिकार भी उन्हें धार्मिक अधिकार देने के पक्ष में थे। वे पति की अनुपस्थिति में सीता–यज्ञ, रूद्रबलि–यज्ञ एवं रूद्र–यज्ञ कर सकती थी, ऐसा उल्लेख मिलता है कि महारानी कौशल्या ने अपने पति की अनुपस्थिति में 'स्वास्तिक यज्ञ' सम्पन्न की थी। अग्रहायण विधि के सहस्त्रारोहण संस्कार में स्त्रियों को वैदिक मंत्रों का पाठ करना पड़ता था।[15] ऐसा उल्लेख मिलता है कि 'लवण–यज्ञ' स्त्रियाँ ही करती थी।[16] रामायण में वर्णित उद्धरण से विदित होता है कि माता कौशल्या अपने पुत्र राम के राज्याभिषेक के दिन प्रातः काल से ही धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न कर रही थी।[17] सुग्रीव के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय बालि की पत्नी तारा यज्ञीय कार्य सम्पन्न कर रही थी[18] कौशल्या और तारा दोनों को रामायण में मंत्रविद् कहा गया है। रावण के बंदी गृह में सीता प्रतिदिन संध्या करती थी।[19] सीता की अनुपस्थिति में अश्वमेध यज्ञ सम्पादित करते समय पति राम को उनकी स्वर्ण प्रतिमा बनवानी पड़ी थी।[20] शातकर्णि प्रथम की पत्नी नागनिका ने भी अनेक वैदिक यज्ञ सम्पादित किया था। स्पष्ट है कि यज्ञीय कार्यों में पत्नी की उपस्थिति स्वीकार की जाती रही।

किन्तु इन्हीं ब्राह्मण ग्रंथों में नारी के धार्मिक अधिकारों के हनन का भी उदाहरण प्राप्त होता है, अर्थात् उनके दूसरे पक्ष को भी उजागर किया गया है जैसे उत्तरवैदिक काल के परवर्ती युग में धार्मिक कृत्यों की सम्पन्नता में नारी का स्थान पुरोहितों ने ग्रहण कर लिया। इसका प्रभाव स्पष्टतः पुत्री को मिलने वाली शिक्षा पर पड़ा। पुरोहित पत्नी द्वारा की जाने वाली यज्ञ विधि को, अग्नि प्रज्जवलित करने वाला पुरोहित करने लगा– इससे पत्नी का अधिकार क्रमशः कम होने लगा और समाज में उनका महत्व भी कम होने लगा–

"सद्धस्मतत्पुरा जायेव हविष्कृदुपोतिष्ठति।
तदिदं पतहिं य एव कश्चनोपतिष्ठति।।"[21]

कालांतर में परिस्थितियाँ बदलती गयी, तदुपरांत न केवल उनका उपनयन एवं ब्रह्मचर्य जीवन क्रमशः बाधित होता गया[22] बल्कि वैदिक ज्ञान एवं यज्ञीय अधिकारों से भी उन्हें वंचित कर दिया गया। इस बात की पुष्टि तत्कालीन स्मृतिकारों के उद्धरण से होती है। जिसके अनुसार विवाह को छोड़कर अन्य संस्कार बिना वैदिक मंत्र के सम्पादित होने चाहिए। याज्ञवल्क्य का कथन है कि स्त्रियों का उपनयन संस्कार नहीं होना चाहिए। वस्तुतः जब उनका उपनयन संस्कार प्रतिबंधित होने लगा, तब उन्हें वैदिक ज्ञान और धार्मिक अधिकारों से वंचित कर

दिया गया। उनके वेद मंत्रोच्चारण पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परिणामतः उन्हें वैदिक ज्ञान और धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया।, तथा शिक्षा की दृष्टि से तो नारी की स्थिति शूद्रों जैसी हो गयी थी।[23]

स्मृति ग्रन्थों में नारी की महत्ता के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। किसी भी समाज का सामाजिक उत्कर्ष उस समाज में स्त्रियों के सम्मान पर आधारित होता है। इसी को दृष्टि में रखकर याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों को बहुत अधिक सम्मान प्रदान करते हुए कहा है– 'सोम देवता ने नारी को पवित्रता दी, गन्धर्व ने मधुर वाणी और अग्नि ने सब प्रकार से पवित्र होने की शक्ति दी अतएव स्त्रियाँ सर्वत्र पवित्र होती हैं।[24] मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि–

''यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रेतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्त प्राफलाः क्रियाः।।'' [25]

उपर्युक्त उद्धरण से ऐसा अवगत होता है कि स्मृतियुगीन समाज में स्त्रियाँ अत्यधिक आदृत थीं। किन्तु नारी के अवगुणों की चर्चा भी मनुस्मृति में की गई है। नारी की सामाजिक स्थिति में ह्रास का प्रथम प्रत्यक्ष चरण स्मृतिकाल से प्रारम्भ होता है। पूर्वोक्त काल तक नारी की स्थिति के विषय में जो कुछ कहा गया वह उसकी पूर्व पीठिका मात्र था। स्मृतिकालीन समाज रूढ़िवादिता की दिशा में अग्रसर हो रहा था। मनु ने ब्राह्मण को अधिक स्वतन्त्रता एवं अधिकार देकर नारी की स्थिति को निम्नतर बना दिया। नारी की अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता समाप्त की गई। स्मृतिकारों ने नारी की स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित करने के लिए उसे पुरुष के संरक्षण में रहने की आज्ञा दी–

''पिता रक्षति कौमारे, भतां रक्षति यौवने।
रक्षति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातन्त्र्यमहंति।।''[26]

मनु की तरह याज्ञवल्क्य ने भी स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया है। डा0 राजनारायण दुबे का कहना है कि स्त्रियाँ स्वभावतः कुटिल होती हैं इसलिए उन्हें किसी न किसी के नियंत्रण में रहना चाहिए क्योंकि स्त्री के गुण दोष पर ही कुल की मर्यादा निर्भर करती है।[27] मनु के अनुसार– ''नारी पुरुष प्रगति पथ पर सबसे बड़ी बाधा है इस कारण विद्वान् लोग उसका साथ नहीं करते वरन् साधुओं को भी पथभ्रष्ट कर उनमें इच्छाशक्ति जागृत करने की शक्ति रखती है। एक स्थल पर मनु ने बहुत ही अनुदार होकर कहा है कि– 'वे कामी हैं, चंचल गति है, प्रेमहीन हैं या असुन्दर उन्हें तो बस पुरुष चाहिए।'[28] नारी की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध के साथ ही साथ उसके याज्ञिक अधिकारों का भी हनन कर दिया गया। ब्राह्मणों को ग्राम्य पुरोहित एवं स्त्री द्वारा किये गए यज्ञ में भोजन करना निषिद्ध माना गया जिससे नारियों की दशा पतन की ओर अग्रसर हुई। स्मृतिकारों ने

नारियों के लिए निर्धारित व्रतोपनयन एवं वेदाध्ययन को निषिद्ध किया। मनु ने स्त्रियों को पापयुक्त, दुष्ट और अशुद्ध तथा दूसरे से सम्बन्ध रखने वाली कहा है। अतः नारी गृह की सीमाओं में आबद्ध हो गई।[29]

इस प्रकार वैदिक एवं उत्तर वैदिक कालीन नारियों की स्थिति की समीक्षा से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि बौद्धकाल के पूर्व सम्पूर्ण समाज की विस्फोटक स्थिति बन गई थी। जातक कथाओं एवं अन्य बौद्ध साहित्य के आधार पर बौद्धकालीन नारियों की स्थिति पर विचार किया जा सकता है।

बौद्ध धर्म का आविर्भाव ब्राह्मण धर्म के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया स्वरूप था। अतः अन्य सभी धार्मिक अन्धविश्वासों के साथ ही ब्राह्मण धर्म की यह धारणा कि नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से हीन है, महात्मा बुद्ध द्वारा निर्मूल घोषित कर दी गई। इससे महात्मा बुद्ध के उदारवादी दृष्टिकोण का पता चलता है। उन्होंने यह घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार जन्म पाता है।[30] इस घोषणा ने इस बात पर सीधा आघात किया कि मोक्ष प्राप्ति के लिए पुत्र का होना अनिवार्य है।

द्वितीयतः महात्मा बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति का मार्ग नारियों के लिए भी रखा तथा सभी जाति की नारियों को संघ में प्रवेश का अधिकार देकर ब्राह्मण धर्म की इस अवधारणा को अमान्य सिद्ध कर दिया कि नारी आध्यात्मिक सत्य को प्राप्त करने की क्षमता नहीं रखती है।[31]

बौद्ध आगमों के काल तक वैदिक परम्परा के अनुयायियों की दृष्टि में पुत्र एवं पुत्री के बीच पर्याप्त भेद स्थापित हो गया था। संयुक्त निकाय में उपलब्ध एक घटना से उस समय पुत्री जन्म पर होने वाली प्रतिक्रिया ज्ञात होती है–एक बार कौशल नरेश प्रसेनजित भगवान बुद्ध के पास गए थे। उसी समय किसी व्यक्ति ने पुत्री जन्म की सूचना उन्हें दी जिससे वह खिन्न हो गए, जिसे देखकर महात्मा बुद्ध ने उन्हें सांत्वना दी और कहा कि–''जो वीर पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनकी जननी स्त्रियाँ ही हैं, वहीं स्त्रियाँ पति, श्वसुर एवं सास की सेवा करती हैं, अतः इनसे कभी भी घृणा नहीं करनी चाहिए।''[32]

उपर्युक्त घटना से दो बातें स्पष्ट होती है, प्रथम यह कि वैदिक परम्परा के अनुयायियों में व्याप्त पुत्री के जन्म पर असन्तोष की भावना महात्मा बुद्ध के समय तक अविच्छिन्न रूप में चली आई थी जिसके मूल में प्रमुख कारण सामरिक दृष्टिकोण का था तथा द्वितीय कारण यह था कि पुत्र एवं पुत्री में इस प्रकार भेदभाव भरी नीति का महात्मा बुद्ध ने विरोध किया। उन्होंने जनसामान्य को यह समझाया कि जिस सामरिक दृष्टिकोण के कारण पुत्र को महत्व दिया जाता है उसका अस्तित्व परोक्ष रूप से पुत्री में विद्यमान है। महात्मा बुद्ध ने कन्या को महत्व

प्रदान करते हुए उनमें स्वावलम्बन एवं स्वाभिमान की भावना उत्पन्न करने वाले सिद्धान्तों का प्रचार किया। अतः स्पष्ट है कि उनमें कहीं पितृ ऋण से मुक्ति पाने के लिए पुत्र प्राप्ति आवश्यक है– इस बात की उपेक्षा की गई है।[33]

पारिवारिक जीवन में माता द्वारा कन्याओं के हृदय में धार्मिक भावना उत्पन्न करने की प्रथा बौद्धागम में पाई जाती है क्योंकि बौद्धयुग तक समाज में नारियों के प्रति उत्तर वैदिक कालीन दृष्टिकोण विद्यमान था। अतः माता के लिए यह स्वाभाविक था कि वह अपनी पुत्रियों को धार्मिक वातावरण से प्रभावित कर दे जिससे विपत्तिकाल में पुत्रियाँ धार्मिक जगत का आश्रय ले विपत्ति से मुक्त हो सकें। कन्याओं के जीवन में धार्मिक बुद्धि के विकास से अत्यधिक परिवर्तन हुआ। यद्यपि इसके पूर्व महात्मा बुद्ध के नूतन एवं स्वतन्त्र दृष्टिकोण से प्रभावित समाज में कन्या को सम्मान मिलने लगा था तथा वह माता–पिता के लिए कष्टों का स्रोत नहीं रह गई थी।[34] नारियों को सक्रिय रूप से धार्मिक साधना में भाग लेने की अनुमति मिलने पर ही कन्याओं में आत्म निर्भरता की भावना उदित हुई। अतः पुत्री का जन्म अमंगलकारी नहीं माना जाता था उनकी शिक्षा पर पुत्रों के समान ध्यान दिया जाता था।[35]

बौद्धागमों में 'पुत्ता' शब्द उपलब्ध होता है जिसका अभिप्राय बिना किसी लिंगभेद के संतान मात्र से है।[36] बौद्ध साहित्य में उत्तरोत्तर कन्या का महत्व वृद्धिगत दृष्टिगोचर होता है। उत्तरकालीन ग्रन्थों में मनुष्यों को कन्या के जन्म पर हर्षित होते हुए पाते हैं। थेरीगाथा के अनुसार उव्विरी अपनी कन्या की मृत्यु पर अत्यन्त दुखित थी।[37] उस समय सुन्दर कन्याएं तो सम्मान की पात्र बन गई थी। विवाह के अवसर पर माता–पिता भावी जामाता से अपनी कन्या का शुल्क लिया करते थे। ऐसा उल्लेख थेरीगाथा से प्राप्त होता है।[38] ऋण के भुगतान के रूप में भी कन्या को लेने का उल्लेख प्राप्त होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि कन्या का जन्म उत्तर बौद्ध युग में विषाद का विषय नहीं रह गया था। प्रत्युत् कुछ लोगों के लिए हर्ष का विषय बन गया था। साधारण व्यक्ति भी अपनी सुन्दर कन्या के कारण राजा का सम्बन्धी बन जाता था। बौद्धयुग के प्रारम्भिक काल तक नारी शिक्षा समाप्तप्राय सी हो चुकी थी। नारी को विवाह के पूर्व या पश्चात् जैसा कि अन्यत्र कहा गया है कि केवल कुशल गृहणी बनने की शिक्षा दी जाती थी।[39] इसका प्रधान कारण यह था कि उस समय स्त्रियों को दी जाने वाली शास्त्रीय शिक्षा निरर्थक सी समझी जाती थी। कन्याओं के भावी जीवन को सुखद बनाने के लिए उन्हें गृह शिक्षा में निपुण कर दिया जाता था। उन्हें पतिकुल के योग्य शिक्षा दे दी जाती थी।[40] स्त्रियों को जीविकोपार्जन की शिक्षा नहीं दी जाती थी। कन्याओं को यह सिखाया जाता था कि वे पति के

पूज्य माता–पिता एवं श्रमण ब्राह्मणों का आदर करें तथा अभ्यागतों को आसन एवं उदक देकर सम्मानित करें।[41] ऐसी शिक्षा इसलिए दी जाती थी कि न तो कन्या पति कुल से लौटायी न जाय और न ही पति द्वारा दण्डित या प्रताड़ित की जाय। आशय यह है कि उस समय शिल्प एवं कला का ज्ञान पुत्र को तथा पति कुल के अनुरूप आचरण करने में दक्षता पुत्री के भावी जीवन को सुखी बनाता था। अतः कन्या के प्रति व्याप्त उपेक्षा एवं असन्तोष व्यवहार की बौद्धागमों में प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है। जहाँ तक कन्याओं की शास्त्रीय शिक्षा का प्रश्न है, वह केवल प्रव्रजित स्त्री–पुरुषों तक सीमित था। इस प्रकार की शिक्षा के प्रति नर–नारी की अनुरक्ति तभी देखी जाती थी, जब उन्हें सांसारिक जीवन दुखमय प्रतीत होने लगता था। अतः ऐसी शिक्षा का द्वार संसार से विरक्त स्त्री एवं पुरुष दोनों के लिए समान रूप से खुला था।[42] नारी भिक्षुणी संघ में प्रवेश लेकर उक्त शास्त्रीय शिक्षा को प्राप्त कर सकती थी।[43]

महात्मा बुद्ध के भिक्षुणी संघ ने इस दिशा में क्रान्तिकारी कार्य किया। सभी भिक्षुणी विहार महिला शिक्षण शाला के समान हो गए थे। वहाँ प्रव्रजित एवं गृहस्थ दोनों प्रकार की महिलाएं शिक्षा प्राप्त करने लगी थीं। वैदिक काल में विदुषी नारियों ने वैदिक ऋचाओं की रचना में महत्वपूर्ण भाग लिया था। बौद्ध भिक्षुणियों ने इस परम्परा को धार्मिक गीतों द्वारा पुर्नजीवित किया। इन गीतों का संग्रह 'थेरीगाथा' के नाम से प्रसिद्ध है।[44] महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं के प्रसार में इनका प्रमुख योगदान था। धम्मादिन्ना, सुबका, पटाचारा शिक्षिकायें थीं।[45] विनयपिटक (चतुर्थ भाग) में चुल्लनन्दा तीन स्थलों पर महान शिक्षिका कहीं गई है। भद्राकुंडकेशा, शुभा, अमोपमा, सुमेधा, राजकुमारी सुमना आदि अन्य विक्षुणियाँ थीं जो महात्मा बुद्ध के साथ धार्मिक परिचर्चा में भाग लेती थीं।[46]

जातक साहित्य से अनेक विदुषी नारियों का उल्लेख प्राप्त होता है। थेरी भिगारमाता, अमरा, उब्बिरी आदि ऐसी नारियाँ थी जो सांसारिक भोग–विलासों से दूर रहकर साधना अध्ययन एवं मनन का जीवन व्यतीत करती थी। क्षेमा के प्रकाण्ड दार्शनिक ज्ञान तथा सूक्ष्म विवेचन ने राजा पसेनदि को आश्चर्यचकित कर दिया। संयुक्त निकाय में सुभद्रा नामक भिक्षुणी का उल्लेख है जो व्याख्यान देने में दक्ष थी।[47] डा0 अल्तेकर के अनुसार महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित करने की अनुमति देकर शिक्षा तथा दर्शन के प्रसार में विशेष योगदान दिया। राजकीय परिवार की स्त्रियाँ सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करती थी।[48] इस प्रकार बौद्धयुगीन भिक्षुणी संघ से नारी शिक्षा को प्रश्रय मिला। अजातशत्रु की माँ को वैदेही इसीलिए कहा जाता था क्योंकि वह विदुषी थी।[49] इसी प्रकार नन्दुत्तरा ने शिल्प एवं विज्ञान की शिक्षा ली थी।[50] कुमारी के लिए पण्डिता, वक्ता मेधाविनी जैसे विशेषणों के

प्रयोग से तत्कालीन नारी शिक्षा का स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है। यत्र तत्र गुरुकुलों में शिष्य–शिष्याओं के उल्लेख मिलते हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि बौद्ध युग में वैदिक कालीन शिक्षा पद्धति के अवशेष भी अपवाद रूप में विद्यमान थे।[51]

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. वृहत् संहिताः 74.5.5.11.15–16; मनु. 9.26
2. ऋग्वेदः 10.85.46
3. ऋग्वेदः 1.72–5; 5.32
4. तैत्तिरीय ब्राह्मणः 3.75
5. शतपथ ब्राह्मणः 1.19.2.14
6. ऋग्वेदः 10.86.10
7. शतपथ ब्राह्मणः 5.1.6.10; तैत्तिरीय ब्राह्मणः 22.2.6
8. ऋग्वेदः 1.13.1–3
9. अथर्ववेदः 2.36.1; 11.1.17.27, ''योषितो यज्ञियाः इमाः।''
10. तैत्तिरीय ब्रा0: 3.8.3
11. ऋग्वेदः 3.8.1.8 ''यादम्पत्ति सुमनसा सुनुत आ च धावतः देवा सो नित्यया शिरा''।
12. शतपथ ब्राह्मणः 1.1.4.13
13. ऐतरेय ब्राह्मणः 1.2.5; शतपथ ब्राह्मणः 5.1.6.10
14. ऐतरेय ब्रा0: 7.9.10
15. पाराशर गृह सूक्तः 3.2
16. पा0गृह0 सूत्रः 2.20, ''स्त्रियश्चोपयजेरम्ना चरितत्वात्''।
17. रामायणः 2.20.15 ''सा क्षौमवसना दृष्टानित्यं व्रतपरायणः अग्नि जुहोति स्म तदा मंत्रविस्कृत मंगला''।।
18. रामायणः 4.16.12; ''तत् स्वस्त्ययनं कृत्वा मंत्रविद्विजयैषिणी''।
19. रामायणः 5–15.48; ''संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी। नदी चेमां शुभजलां संध्यार्थ बखर्णिनी''।
20. रामायणः 5–15.48
21. शतपथ ब्राह्मणः 14.3.1.85
22. वीर मित्रोः पृ0 402 पर हारीत का वचन। स्मृति चंद्रिकाः पृ0 62
23. हरिदत्त शास्त्रीः हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ0 137

24. याज्ञवल्क्य स्मृतिः 1/80, मनु0 9/33
25. मनु0: 3/56
26. मनुस्मृतिः 9/3
27. डॉ0 राजनारायण दुबेः स्मृतिकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृ0 25–26
28. मनुस्मृति, 9/17
29. वही, 2/66, ''अमंत्रिका तु कार्येय...यथाक्रमम्।''
30. मज्झिम निकायः 1.2.4
31. विनयपिटकः भिक्षुणी स्कन्ध
32. संयुक्त निकायः 3/2/6 प्रथम भाग
33. वही; 3/2/6 प्रथम भाग, पृ0 78
34. संयुक्त निकायः 1/28, 1/29
35. आई0बी0 हार्नरः विमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, पृष्ठ 19–20
36. संयुक्त निकायः 1/7, अंगुत्तरनिकायः 2/312, सुसनिपातः 1/2/24
37. थेरीगाथा परमत्थदीपनी अट्ठकथाः 3/1/52, पृ0 53–54
38. थेरीगाथाः परमत्थदीपनी अट्ठकथाः 15/1/422; 6/5/152–153
39. इण्डियन एजूकेशन इन एन्श्येंट एण्ड लेटर टाइम्स; पृ0– 75
40. थेरीगाथा : 15/1/409; ...'चयाम्हि अनुसिट्ठा'
41. अंगुत्तर निकायः 2/303
42. ग्रेट विमेन आव इण्डियाः अद्वैत आश्रम, मायावती, अल्मोरा, पृ0 106–107
43. भरत सिंह उपाध्यायः थेरीगाथाएं
44. थेरीगाथा परमत्थदीपनी
45. वही,
46. डॉ0 जयशंकर मिश्रः प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 390
47. अल्तेकरः प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ0 213
48. सुमंगलविलासिनीः 1/147
49. थेरी की अट्ठकथाः पृ0 46
50. दीघ निकायः 1/96, संयुक्त निकाय 3/111
51. दीघ निकाय : 3/142